IAS

GS World

Committed to Excellence

PCS

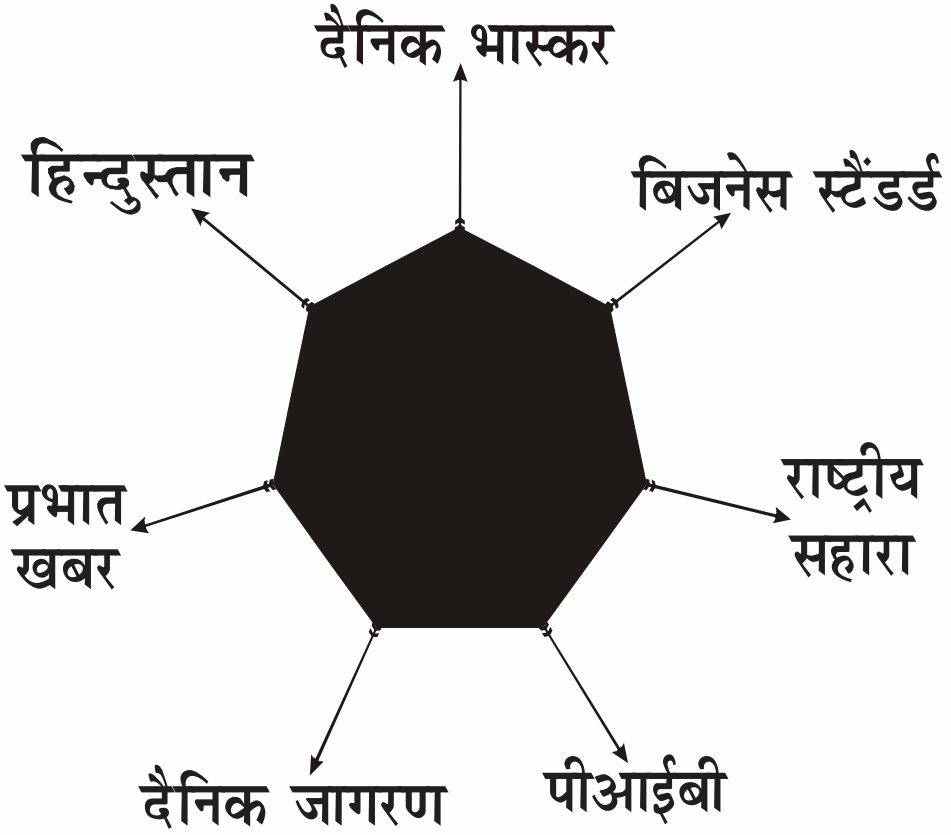

संदर्भित सार एवं संभावित प्रश्नों सहित

(30 अक्टूबर - 04 नवंबर, 2017)

-: Head Office:-

705, 2nd Floor, Main Road, Dr. Mukherjee Nagar, DELHI-110009

Ph. : 011-27658013, 7042772062/63

पुनर्पूंजीकरण बॉन्ड के निहितार्थ!

साभार: बिजनेस स्टैंडर्ड
(30 अक्टूबर, 2017)

ए के भट्टाचार्य
(आर्थिक विश्लेषक)

सार

इस लेख में लेखक ए के भट्टाचार्य सवाल उठा रहे हैं क्या सरकार, सरकारी बैंकों के स्वामित्व में बदलाव लाएगी? क्या प्रबंधन में ऐसा सुधार किया जाएगा कि फंसे हुए कर्ज की समस्या दोबारा न उभरे?

विशेष- यह लेख सामान्य अध्ययन प्रश्न पत्र-III (अर्थव्यवस्था) के लिए महत्वपूर्ण है।

गत वर्ष दीवाली के कुछ दिन बाद देश के बैंक जबरदस्त मशक्कत करते दिख रहे थे। नोटबंदी के चलते 500 और 1,000 रुपये के नोट बंद हो गए थे और बैंकों के सामने पुराने नोट बदलने के लिए लंबी कतारें लगी थीं। यह दीवाली खासकर सरकारी क्षेत्र के बैंकों के लिए पिछली दीवाली से अलग थी। दीवाली के तकरीबन एक सप्ताह बाद इन बैंकों ने राहत की सांस ली क्योंकि 24 अक्टूबर को सरकार ने अगले दो साल में सरकारी बैंकों में 2.11 लाख करोड़ रुपये की पूंजी डालने की घोषणा की।

यह राशि पूर्ण पूंजीकरण के लिए जरूरी 3 लाख करोड़ रुपये से थोड़ी ही कम है लेकिन इससे समस्या से निपटने में सरकार की गंभीरता पता चलती है। अभी इस बारे में ज्यादा जानकारी सामने नहीं आई है लेकिन अनुमान है कि 18,000 करोड़ रुपये की राशि इक्विटी के रूप में आएगी। 58,000 करोड़ रुपये की राशि बैंक बाजार से जुटाएंगे। 1.35 लाख करोड़ रुपये की शेष राशि पुनर्पूंजीकरण बॉन्ड के रूप में होगी। इसके बारे में ज्यादा जानकारी आनी शेष है।

वित्त मंत्री अरुण जेटली, आरबीआई गवर्नर ऊर्जित पटेल और मुख्य आर्थिक सलाहकार अरविंद सुब्रमण्यन भी अनेक अवसरों पर इस योजना की बात कर चुके हैं। इससे तीन बातें साफ तौर पर सामने आ रही हैं। पहली बात, मोदी सरकार अपनी राजकोषीय सुदृढ़ीकरण योजना में रियायत के लिए तैयार है ताकि सरकारी बैंकों को जरूरी पूंजी दी जा सके। सरकार के कई बयानों के उलट तथ्य यह भी है कि पुनर्पूंजीकरण बॉन्ड के आगमन से राजकोषीय घाटा बढ़ेगा। अगर राजस्व बढने से इस काम में मदद नहीं मिलती तो यह मोदी सरकार का पहला वर्ष होगा जब वह राजकोषीय घाटे के लक्ष्य के मोर्चे पर पिछड़ जाएगी।

आरबीआई गवर्नर ने सही कहा था कि बॉन्ड जारी करना सरकार के लिए नकदी निरपेक्ष होगा लेकिन इससे सरकार की उधारी तो बढ़ेगी। अतिरिक्त उधारी और इन बॉन्ड पर सालाना ब्याज ही 8,000 से 9,000 करोड़ रुपये होगा। इससे सरकार का घाटा बढ़ेगा। पटेल ने भी इस आशंका को खारिज नहीं किया था। उन्होंने कहा कि लंबी अवधि के दौरान इसका राजकोषीय असर होना तय है। मुख्य आर्थिक सलाहकार ने कहा कि अंतरराष्ट्रीय मानकों और आईएमएफ के मानकों में भी सरकार के घाटे का आकलन करते समय इस तरह के बॉन्ड को शामिल नहीं किया जाता है। इनका उल्लेख होता है लेकिन उक्त संदर्भ में नहीं। परंतु प्रभावी तौर पर देखें तो यह राजकोषीय घाटे में विस्तार का सबब बनेगा। यहां तक कि सुब्रमण्यन ने सार्वजनिक भाषण में यह स्वीकार किया कि हमारे देश में जो व्यवस्था है उसमें ये बॉन्ड घाटे में शामिल होंगे। संभव है कि सरकार पुनर्पूंजीकरण बॉन्ड के असर को अलग से प्रस्तुत करे। कई साल पहले तेल बॉन्ड के मामले में ऐसा किया जा चुका है ताकि तेल कंपनियां कच्चे तेल की बढ़ी कीमतों से निपट सकें और उसे ग्राहकों पर न डालना पड़े। अगर यह राह चुनी जाती है तो विश्लेषक और रेटिंग एजेंसियां दो तरह के घाटों का जिक्र करेंगी। एक वास्तविक और दूसरा आधिकारिक। वास्तविक घाटे में पुनर्पूंजीकरण बॉन्ड शामिल होगा। तब मामला और जटिल हो जाएगा।

मोदी सरकार द्वारा इन बॉन्ड को राजकोषीय घाटे के विस्तार में शामिल करने के इरादे का अंतिम पुष्ट करता संकेत वित्त मंत्री ने दिया। उन्होंने अप्रत्यक्ष तौर पर कहा कि सरकार राजकोषीय विवेक और पूंजीगत व्यय में संतुलन रखेगी। इसका मतलब है सरकार बीच का रास्ता अपनाएगी जहां राजकोषीय घाटे के लक्ष्य को कुछ शिथिल बनाया जा सकता है और उच्च पूंजीगत व्यय से उच्च वृद्घि हासिल करने का प्रयास किया जा सकता है।

शेयर बाजार भी सरकार के कदम के पक्ष में नजर आ रहे हैं। बुधवार को सेंसेक्स में 435 अंक की उछाल आई और वह रिकॉर्ड स्तर पर पहुंच गया। 22 सूचीबद्घ सरकारी बैंकों के बाजार पूंजीकरण में 1.2 लाख करोड़ रुपये की बढ़ोतरी आई। निफ्टी बैंक सूचकांक एक दिन में 30 फीसदी उछला जो खुद में एक रिकॉर्ड है। जाहिर है बाजार को लग रहा है कि दिवालिया कानून और बैंकों में नई पूंजी डालने से वित्तीय क्षेत्र का दबाव कम होगा।

बाजार की सकारात्मक प्रतिक्रिया अहम है और सरकार के नए पूंजीकरण पैकेज के लिए भी यह अपने आप में शुभ संकेत समेटे है। याद रहे कि 2.11 लाख करोड़ रुपये के नए पैकेज में से 58,000 करोड़ रुपये की राशि को इक्विटी के जरिये डाला जाएगा। अगर बाजार को इन सूचीबद्घ सरकारी बैंकों में सुधार की क्षमता नजर आती है और उसे लगता है कि पुनर्पूंजीकरण बॉन्ड के बाद वे बेहतर मुनाफा कमाने में सफल होंगे तो इससे इन बैंकों के शेयरों की खुदरा बिक्री भी बढ़ेगी। आरबीआई गवर्नर को उम्मीद है कि इस पैकेज के बाद सरकारी बैंकों के निजी अंशधारक भी उत्साहित होंगे और पूंजी की जरूरत बाजार फंडिंग से भी पूरी होगी।

तीसरा, पुनर्पूंजीकरण पैकेज अपने आप में इन सरकारी बैंकों की परिसंपत्ति की गुणवत्ता सुधारने वाला नहीं साबित होगा। इसीलिए इन बैंकों में आगे और क्या सुधार किए जा सकते हैं इस बारे में सवाल उठाए जा रहे हैं। वित्त मंत्री ने सुधार उपायों का जिक्र किया है जो सरकार आने वाले समय में उठाएगी। ये उपाय पूंजीकरण पैकेज के पूरक होंगे। ऐसे सुधारों के बारे में विस्तृत ब्योरे की अभी प्रतीक्षा है।

आरबीआई गवर्नर भी संकेत दे चुके हैं कि ये सुधार संबंधी उपाय क्या हो सकते हैं। पटेल का मानना है कि उन बैंकों को प्राथमिकता मिलेगी जिनकी स्थिति पूंजीकरण से सुधर सकती है। उन्होंने कहा, 'इस संबंध में आकलित रुख अपनाया जाएगा जहां जिन बैंकों ने अपनी बैलेंस शीट को बेहतर तरीके से निपटाया होगा और जो नई पूंजी को कर्ज देने में इस्तेमाल करेंगे उनको प्राथमिकता दी जाएगी। यह सरकारी पुनर्पूंजीकरण कार्यक्रम में बाजार के समान अनुशासन लाने का अच्छा तरीका है और पिछली ऐसी योजनाओं से अलग भी।'

निश्चित तौर पर भारतीय अर्थव्यवस्था में दोहरी बैलेंस शीट की समस्या से तब तक निजात नहीं पाई जा सकती है जब तक कि आगे और सुधारों का क्रियान्वयन नहीं किया जाता। क्या सरकार सरकारी बैंकों के स्वामित्व के तौर तरीकों में बदलाव लाएगी? क्या इनके प्रबंधन में ऐसा बदलाव किया जाएगा कि फंसे हुए कर्ज की समस्या दोबारा सर न उठाए? इन बातों को देखें तो मौजूदा पैकेज अधूरा लगता है। हालांकि इसमें आरबीआई के डिप्टी गवर्नर विरल भट्टाचार्य के सुदर्शन चक्र और मुख्य आर्थिक सलाहकार अरविंद सुब्रमण्यन के ब्रह्मास्त्र दोनों के गुण हैं। इन दोनों ने ये नाम सुधार पैकेजों को दिए थे।

महत्वपूर्ण तथ्य

बैंक पुनर्पूंजीकरण से सम्बंधित तथ्य

- आरबीआई के पूर्व गवर्नर बिमल जालान ने सरकारी बैंकों के पुनर्पूंजीकरण के सरकारी कदम को सही ठहराते हुए कहा कि इससे बैंकिंग व्यवस्था मजबूत बनेगी और निवेश में इजाफा होगा। जालान ने कहा कि उच्च पूंजीगत खर्च के चलते अगर राजकोषीय घाटे में 0.1 या 0.2 फीसदी की बढ़ोतरी होती है तो इससे कोई अंतर नहीं पड़ेगा क्योंकि अर्थव्यवस्था कुल मिलाकर मजबूत है।
- मंगलवार को वित्त मंत्री अरुण जेटली ने सरकारी बैंकों को 2.11 लाख करोड़ रुपये की पूंजी देने का ऐलान किया था, जो बॉन्डों, बजट सहायता और इक्विटी की बिक्री के जरिए दिए जाएंगे। सरकार ने पीएसयू बैंकों के पुनर्पूंजीकरण के लिए पहली बार ऐसे बॉन्ड 1990 के दशक में जारी किए थे। जालान ने कहा, वित्त मंत्री के कदम से निश्चित तौर पर मांग व निवेश में मजबूती आएगी और पूरी बैंकिंग व्यवस्था मजबूत बनेगी। उन्होंन कहा, जहां तक राजकोषीय घाटे का प्रश्न है, वित्त मंत्री ने संकेत दिया है कि वह 3.2 फीसदी के लक्ष्य पर टिके रहेंगे।

बोफा-एमएल की रिपोर्ट

- बैंक ऑफ अमेरिका मेरिल लिंच (बोफा-एमएल) की एक रिपोर्ट में कहा गया है कि देश की आर्थिक स्थिति में सुधार के लिए बैंकों को पूंजी उपलब्ध कराना काफी महत्वपूर्ण है। इससे बैंकों से कर्ज प्रवाह बढ़ेगा और आर्थिक गतिविधियों में तेजी आएगी। रिपोर्ट में कहा गया है, बैंकों में नई पूंजी डालने से ब्याज दरें नीचे आएंगी, मांग बढ़ेगी, बंद पड़े कारखानों में काम शुरू होगा और दो-तीन साल में निवेश तेजी से बढ़ेगा।

एसबीआई रिसर्च रिपोर्ट

- एसबीआई रिसर्च रिपोर्ट में कहा गया है कि सरकारी बैंकों को पूंजी देना बड़ा सुधार है, जिसका लक्ष्य उधारी में इजाफा और नौकरियों के सृजन में सहायता देने के लिए है। एसबीआई रिसर्च रिपोर्ट इकोरैप के मुताबिक, बैंकिंग क्षेत्र में पीएसबी की बाजार हिस्सेदारी 70 फीसदी है और यह सरकार को मुद्रा योजना में उधारी में मदद करेगा, जहां देश में रोजगार के सबसे ज्यादा मौके हैं। रिपोर्ट में कहा गया है कि अभी तक मुद्रा योजना के तहत करीब 9.18 करोड़ इकाइयों को कर्ज दिए गए हैं और ऐसे 80 फीसदी कर्ज महिला उद्यमियों को आवंटित किए गए हैं।

मूडीज की राय

- मूडीज इन्वेस्टर सर्विस ने आज कहा कि सरकारी बैंकों को 2.11 लाख करोड़ रुपये की पूंजी देने का फैसला सकारात्मक है क्योंकि इससे कमजोर पूंजीकरण के समाधान में मदद मिलेगी। मूडीज के उपाध्यक्ष श्रीकांत बदलामणि ने कहा, इन बैंकों के कमजोर पूंजीकरण के समाधान के लिए पर्याप्त रकम दी जा रही है और यह काफी ज्यादा सकारात्मक है। 2.11 लाख करोड़ रुपये की पूंजी में से 1.35 लाख करोड़ रुपये पुनर्पूंजीकरण बॉन्ड के तौर पर दिए जाएंगे। मूडीज का अनुमान है कि रेटिंग वाले 11 पीएसबी को अगले दो साल में करीब 70,000-95,000 करोड़ रुपये की दरकार होगी।

संभावित प्रश्न

सरकार के द्वारा बैंकों को पुनर्पूंजीकृत करना क्या भारतीय बैंकिंग व्यवस्था में बढ़ते एनपीए की समस्या को सुलझा पाएगा? चर्चा करें।

स्पीकर का निष्पक्ष होना जरूरी

साभार: प्रभात खबर
(31 अक्टूबर, 2017)

वरुण गांधी
(सांसद, भाजपा)

सार

इस लेख में लेखक संसद में तथा विधान मंडलों में सभापति अथवा स्पीकर्स को प्राप्त शक्तियों के आधार पर उसके राजनैतिक रूप से तटस्थ होने की आवश्यकता पर चर्चा कर रहे हैं तथा पुराने सदनीय उदाहरणो को भी बता रहे है।

विशेष- यह लेख सामान्य अध्ययन प्रश्न पत्र-II (भारतीय राजव्यवस्था) के लिए महत्वपूर्ण है।

साल 1975 की बात है। प्रधानमंत्री ने पांचवीं लोकसभा के स्पीकर डॉ जीएस ढिल्लन को पद छोड़ने को कहा, और उन्हें जहाजरानी मंत्री बना दिया। यह एक नजीर थी, जिसने आनेवाले वक्त में इस पद पर बैठनेवालों को भी मन में ख्वाहिश पालने का हकदार बना दिया।

ऐसे कई उदाहरण हैं, जब विधानसभा के स्पीकर ने प्रत्यक्षत: राजनीतिक फैसले से एक राजनीतिक संकट को टाल दिया। मसलन, दलबदल विरोधी कानून विधायिका में पार्टी छोड़नेवाले प्रतिनिधि की सदस्यता खत्म करने के प्रावधान के साथ व्यक्तिगत दलबदल पर रोक लगाता है, लेकिन अगर दलबदल करनेवाले सदन में पार्टी सदस्य संख्या के एक तिहाई से अधिक हैं, तो पार्टी तोड़ने की इजाजत है।

यह तय करने का अधिकार कि प्रतिनिधि दलबदल के बाद सदस्यता खत्म किये जाने के दायरे में आता है या नहीं, सदन के पीठासीन अधिकारी को दिया गया है। वर्ष 2016 में अरुणाचल प्रदेश विधानसभा में स्पीकर नाबाम रेबिया द्वारा (सत्तारूढ़ दल के 41 सदस्यों में से) सोलह एमएलए अयोग्य घोषित कर दिये गये थे, हालांकि ना तो उन्होंने पार्टी छोड़ी थी, ना ही इसके निर्देशों का उल्लंघन किया था। मेघालय के स्पीकर पीके क्युंदियाह ने 1992 में मुख्यमंत्री के खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव पेश किये जाने से ठीक पहले मतदान का अधिकार निलंबित कर दिया और बाद में पांच विधायकों को निलंबित कर दिया।

शिवराज पाटिल ने दलबदल विरोधी कानून की 'कमजोर कड़ियों' पर दुख जताया और व्यवस्था दी कि विभाजन किस्तों में हो सकता है, एक बार में एक विधायक; जिससे दबलबदल कानून का मकसद ही नाकाम हो सकता है।

इसके मुकाबले में आयरलैंड के कानून को देखिये- जिसकी संसदीय व्यवस्था हमारे जैसी ही है। वहां स्पीकर का पद ऐसे शख्स को दिया जाता है, जिसने लंबे अंतराल में राजनीतिक महत्वाकांक्षा को तिलांजलि देकर विश्वसनीयता हासिल की है।

वेस्टमिंस्टर मॉडल में स्पीकर को कैबिनेट में शामिल किया जाना वर्जित समझा जाता है। सिर्फ यूनाइटेड स्टेट्स में, जहां न्यायपालिका, कार्यपालिका और विधायिका के बीच शक्ति पृथक्करण का सिद्धांत कठोरता से लागू है, वहां स्पीकर को खुले तौर पर सक्रिय राजनीति में शामिल होने की इजाजत है। स्पीकर के तौर पर किये काम के आधार पर भविष्य में इनाम के आश्वासन ने इस पद को राजनीतिक महत्वाकांक्षा की सीढ़ी बना दी है।

स्पीकर की स्थिति बड़ी विरोधाभासी है। इस पद पर (चाहे संसद हो या राज्य की विधानसभा) बैठनेवाला किसी पार्टी के टिकट पर चुनाव लड़कर आता है, फिर भी उससे अपेक्षा की जाती है कि वह पार्टी से तटस्थ व्यवहार करेगा/करेगी।

इस सबके बीच वह अगले चुनाव में फिर से पार्टी के टिकट का आकांक्षी रहेगा। तेजस्वी यादव ने इस बात को बोल ही दिया, जब उनसे जेडीयू के साथ गठबंधन धर्म को लेकर सवाल किया गया। तेजस्वी ने कहा, 'अगर हमारी मंशा सरकार की बांह मरोड़ने की ही होती, तो हमने स्पीकर का पद अपने पास ही रखा होता।'

ये घटनाएं बताती हैं कि दलबदल विरोधी कानून में अधिक स्पष्टता लाने की जरूरत है। शायद बेहतर होता कि प्रतिनिधि की अयोग्यता से जुड़े ऐसे महत्वपूर्ण फैसले चुनाव आयोग की मदद लेते हुए राष्ट्रपति द्वारा तय किये जाते। स्पीकर का फैसला अंतिम होना भी इसके दुरुपयोग की संभावना को बढ़ा देता है।

वर्ष 2016 में तमिलनाडु विधानसभा के तकरीबन सभी विधायकों को निलंबित कर दिया गया था, जबकि विरोध करते और लोकतंत्र की सेहत को लेकर सवाल उठाते डीएमके सदस्यों को सामूहिक तौर पर सदन से निकाल दिया गया था। भारत के लोकतांत्रिक मूल्यों पर चोट करनेवालों के साथ पक्षपाती स्पीकरों के कारण राज्यों की विधानसभाओं में ऐसे निलंबन के मामले बढ़ते जा रहे हैं।

मौजूदा स्पीकर के लिए दोबारा चुनाव जीतने की जरूरत भी उसके फैसलों पर असर डालती है। स्पीकर की संसदीय सीट पर उसके खिलाफ प्रत्याशी नहीं उतारे जाने की परंपरा के कारण ब्रिटिश पार्लियामेंट के हाउस ऑफ कॉमन्स में चाहे किसी भी पार्टी का सदस्य हो, कभी भी अपनी सीट पर चुनाव नहीं हारा। इसकी तुलना में भारत में देखें, तो ऐसे कई स्पीकर (डॉ जीएस ढिल्लन- पांचवीं लोकसभा के स्पीकर, डॉ बलराम जाखड़- सातवीं और आठवीं लोकसभा के स्पीकर) हैं, जिन्होंने आम चुनाव में अपनी सीट गंवा दी।

इसके अलावा किसी भारतीय स्पीकर को पद छोड़ने के बाद राज्यसभा का सदस्य नहीं बनाया गया, जबकि ब्रिटिश पार्लियामेंट स्पीकर को खुद ही राज्यसभा में भेज देती है। वीएस पेज की अध्यक्षता वाली पेज कमेटी (1968) ने सुझाव दिया था कि अगर स्पीकर ने अपने

कार्यकाल में बिना पक्षपात काम किया है, तो उसकी अगली संसद की सदस्यता जारी रहने देना चाहिए।

यह भी दलील दी जा सकती है कि स्पीकर बननेवाले को लोकसभा या विधानसभा का चुनाव निर्दलीय उम्मीदवार के रूप में लड़ना चाहिए। स्पीकर को जीवनभर के लिए पेंशन दी जानी चाहिए और भविष्य में राष्ट्रपति पद को छोड़ कर कोई भी राजनीतिक पद ग्रहण करने से प्रतिबंधित कर दिया जाना चाहिए। स्पीकर पद से पक्षपात को अलग किये जाने के लिए अन्य परंपराओं की स्थापना जरूरी है।

1996 तक लोकसभा में स्पीकर हमेशा सत्तारूढ़ पार्टी का होता था। कांग्रेस के पीए संगमा के एकमत से हुए चुनाव ने एक नयी परंपरा को जन्म दिया- स्पीकर सत्तारूढ़ पार्टी दल के बजाय दूसरी पार्टी से बना था। लेकिन, फिर हम पुराने ढर्रे पर लौट आये।

एक परिपक्व लोकतंत्र के तौर पर हमें स्पीकर की निष्पक्षता की मांग करनी चाहिए। ऐसे भी हुआ है, जब सरकार से समर्थन वापस लेनेवाले सांसदों की लिस्ट में स्पीकर (2008 के मध्य में सोमनाथ चटर्जी के मामले में ऐसा हुआ था; उन्होंने पार्टी के आदेश की अवहेलना की) का नाम दर्ज हुआ था। स्पीकर की तटस्थता को नुकसान पहुंचानेवाली ऐसी घटनाओं से बचना चाहिए।

ऐसी निष्पक्षता के जवाब में राजनीतिक पाबंदियां नहीं लगायी जानी चाहिए। अविश्वास प्रस्ताव पर सरकार के बच जाने के बाद 2008 में पार्टी अनुशासन तोड़ने के लिए सोमनाथ चटर्जी का सीपीआइ (एम) से निष्कासन इसका एक अफसोसनाक उदाहरण है।

संबंधित तथ्य

- लोकसभा अध्यक्ष, भारतीय संसद के निम्नसदन, लोकसभा का सभापति एवं अधिष्ठाता होता है। उसकी भूमिका वेस्टमिंस्टर प्रणाली पर आधारित किसी भी अन्य शासन-व्यवस्था के वैधायिकीय सभापति के सामान होती है। उसका निर्वाचन लोकसभा चुनावों के बाद, लोकसभा की प्रथम बैठक में ही कर लिया जाता है। वह संसद के सदस्यों में से ही पाँच साल के लिए चुना जाता है। उससे अपेक्षा की जाती है कि वह अपने राजनितिक दल से इस्तीफा दे दे, ताकि कार्यवाही में निष्पक्षता बनी रहे। वर्त्तमान लोकसभा अध्यक्ष श्रीमती सुमित्रा महाजन है, जोकि अपनी पूर्वाधिकारी, मीरा कुमार के बाद, इस पद की दूसरी महिला पदाधिकारी हैं
- लोकसभा अध्यक्ष का निर्वाचन लोकसभा के सदस्यों के द्वारा किया जाता है। निर्वाचन की तिथि राष्ट्रपति के द्वारा निश्चित की जाती है। राष्ट्रपति के द्वारा निश्चित की गयी तिथि की सूचना लोकसभा का महासचित सदस्यों को देता है। निर्वाचन की तिथि के एक दिन पूर्व के मध्याह्न से पहले किसी सदस्य द्वारा किसी अन्य सदस्य को अध्यक्ष चुने जाने का प्रस्ताव महासचिव को लिखित रूप में दिया जाता है। यह प्रस्ताव किसी तीसरे सदस्य द्वारा अनुमोदित होना चाहिए। इस प्रस्ताव के साथ अध्यक्ष के उम्मीदवार सदस्य का यह कथन संलग्न होता है कि वह अध्यक्ष के रूप में कार्य करने के लिए तैयार है। निर्वाचन के लिए एक या अधिक उम्मीदवारों द्वारा प्रस्ताव किये जा सकते हैं। यदि एक ही प्रस्ताव पेश किया जाता है, तो अध्यक्ष का चुनाव सर्वसम्मत होता है और यदि एक से अधिक प्रस्ताव प्रस्तुत होते हैं, तो मतदान कराया जाता है। मतदान में लोकसभा के सदस्य ही शामिल होकर अध्यक्ष का बहुमत से निर्वाचन करते हैं।
- लोकसभा-अध्यक्ष लोकसभा के सत्रों की अध्यक्षता करता है और सदन के कामकाज का संचालन करता है। वह निर्णय करता है कि कोई विधेयक, धन विधेयक है या नहीं। वह सदन का अनुशासन और मर्यादा बनाए रखता है और इसमें बाधा पहुँचाने वाले सांसदों को दंडित भी कर सकता है। वह विभिन्न प्रकार के प्रस्ताव और संकल्पों, जैसे अविश्वास प्रस्ताव, स्थगन प्रस्ताव, सेंसर मोशन, को लाने की अनुमति देता है और अटेंशन नोटिस देता है। अध्यक्ष ही यह तय करता है कि सदन की बैठक में क्या एजेंडा लिया जाना है।

संभावित प्रश्न

भारतीय संविधान में वर्णित लोकसभा स्पीकर की शक्तियों की एवं विश्व के अन्य प्रमुख संविधानों में वर्णित स्पीकरों के पदों के साथ तुलनात्मक रूप में विश्लेषण प्रस्तुत करें।

कैटेलोनिया आजादी का मसला

साभार : प्रभात खबर
(1 नवंबर, 2017)

डॉ श्रीश पाठक
[अंतर्राष्ट्रीय मामलों के जानकार]

सार

इस लेख में लेखक स्पेन के एक राज्य कैटेलोनिया के द्वारा अलग होने तथा उससे वहां की राजनीति पर पड़ने वाले प्रभाव की चर्चा की है। साथ ही ऐसी अलगाव वादी मांगे उठने के पीछे उत्तरदायी कारणों को भी दर्शाया है।

विशेष- यह लेख सामान्य अध्ययन प्रश्न पत्र-II (अंतर्राष्ट्रीय संबंध) के लिए महत्वपूर्ण है।

इस सहस्त्राब्दी के प्रारंभ से अंतरराष्ट्रीय संबंधों के अध्ययन को 'विश्व राजनीति के वैश्वीकरण की प्रक्रिया' के तौर पर देखने की वकालत की जाती है। इसका तात्पर्य यह है कि अब विश्व के किसी भी स्थानीय घटना का एक वैश्विक परिप्रेक्ष्य है और किसी वैश्विक परिप्रेक्ष्य अथवा परिघटना का एक स्थानीय असर भी महत्वपूर्ण है।

आज की विश्व राजनीति में इसलिए ही अंतरसंबंधन (इंटरकनेक्टेडनेस) एक प्रभावी पहलू है। इस दृष्टिकोण से इस समय स्पेन में चल रहे कैटेलोनिया विवाद के निहितार्थ भारतीय संबंध में भी महत्वपूर्ण हैं। स्पेन का एक महत्वपूर्ण राज्य कैटेलोनिया अपनी स्वतंत्रता की मांग कर रहा है। समूचा पश्चिम स्पेन के पक्ष में है और कैटेलोनिया की स्वतंत्रता को गैरजरूरी व असंवैधानिक करार दिया है।

कैटेलोनिया की राजधानी बार्सीलोना कुशल खेल आयोजनों के लिए जानी जाती है, जो इस समय यूरोप सहित पूरे विश्व में अपने आजादी के आंदोलनों के लिए जाना जा रहा है।

प्राचीन मध्यकाल की ऐतिहासिक विरासत वाले कैटेलोनियाई समाज ने अपनी अलग भाषा, संस्कृति और अस्मिता अक्षुण्ण बनाये रखी है। नौवीं शती में बार्सीलोना प्रभाग का गठन कुछ छोटे-छोटे भूभागों को मिलाकर किया गया, ताकि पश्चिमी यूरोपियन देशों और मुस्लिम शासित स्पेन के बीच एक प्रतिरोधक मध्यवर्ती राज्य (बफर स्टेट) बनाया जा सके।

यहीं से कैटेलोनिया अपनी पृथक और खास अस्मिता गढ़ सका। कालांतर में यह स्पेन का भाग बना भी, तो इसकी पृथक अस्मिता की जद्दोजहद चलती रही। 19वीं शताब्दी में पूरा यूरोप जब राष्ट्रवाद की उन्मादी आग में तप रहा था, तब कैटेलोनिया में भी राष्ट्रवाद ने जोर पकड़ा और इसने पृथक स्वतंत्र राष्ट्र बनने की अपनी महत्वाकांक्षा प्रदर्शित की।

वर्ष 1978 के नये स्पेनिश संविधान ने कैटेलोनिया को वह स्वायत्तता प्रदान की जिसकी फ्रांसिस्को फ्रैंको के तानाशाही में निर्ममता से अवहेलना की गयी। स्पेनिश संविधान फ्रांस और इटली के संविधानों की तरह ही एकात्मक संविधान है, जहां केंद्र को राज्यों की तुलना में अधिक वरीयता दी जाती है।

इसके उलट अगर अमेरिका और भारत जैसे राष्ट्रों की तरह यदि स्पेन में भी संघीय सरंचना अपनायी जाती, जिसमें राज्य इकाईयां केंद्र की तरह ही महत्वपूर्ण और प्रभावशाली होती हैं, तो शायद कैटेलोनिया एक स्पेनिश झंडे के अधीन अपनी पृथक अस्मिता के साथ न्याय कर सकता और यह राज्य अपनी राष्ट्रीय अस्मिता के लिए संघर्षरत न होता। अब कैटेलोनिया जो अपने पृथक इतिहास, भाषा और संस्कृति के साथ स्पेन के 16 प्रतिशत लोगों का घर है, जिसका देश के निर्यात में लगभग 26 प्रतिशत का योगदान है, जिसकी देश के समूचे जीडीपी में 19 प्रतिशत की भागीदारी है और जो स्पेन के सर्वाधिक विकसित राज्यों में है तथा जहां देश के कुल विदेशी निवेश का लगभग 21 प्रतिशत निवेशित है; स्वाभाविक है कि संविधानप्रदत्त स्वायत्तता इस राज्य के लिए पर्याप्त नहीं है।

स्पेन के बाकी राज्य यदि संविधान में परिवर्तन की मांग कर संविधान की प्रकृति को संघवादी करने का प्रयास करते, तो संभवत: कैटेलोनिया एक अलग राष्ट्र-राज्य की अपनी मांग स्थगित रखता।

कैटेलोनिया विवाद को राष्ट्रवाद के विमर्श के रूप में देखने की जरूरत है। राष्ट्रवाद की संकल्पना पश्चिमजनित है। ऐसे राष्ट्रवाद का नारा एकरूपता का है। एक झंडा, एक भाषा, एक संस्कृति से मिलकर एकता तक पहुंचने की निष्ठा का नाम पश्चिमी राष्ट्रवाद है।

किंतु भारतीय स्वतंत्रता सेनानियों ने जिस राष्ट्रवाद की बुनियाद रखी, उसका आधार विभिन्नता को बनाया और अनेकता में एकता के दर्शन करने की वकालत की। पिछले सत्तर सालों में आधुनिक भारत ने एकबद्ध होकर भारतीय राष्ट्रवाद के रूप को सही साबित कर दिया है।

आधुनिक राष्ट्रवाद की जन्मभूमि यूरोप ने राष्ट्रवाद की अपनी संकल्पना इतनी संकीर्ण रखी है कि इसने यूरोप को दो-दो विश्वयुद्धों से झुलसाया ही। अभी यूरोप में दो दर्जन से अधिक ऐसे अलगाववादी आंदोलन चल रहे हैं, जो किसी भी समय अपनी पृथक अस्मिता के साथ नये राष्ट्र बनने को तत्पर हैं।

कैटेलोनिया की जनता ने जनमत परीक्षण में और कैटेलोनिया सांसदों ने संसद में नये कैटेलोनिया राष्ट्र के पक्ष में मतदान किये हैं। मैड्रिड ने बार्सीलोना की सरकार को अपदस्थ कर इस दिसंबर में नये चुनाव कराने का आदेश दे दिया है और पहली बार संविधान की धारा-155 का प्रयोग करके कैटेलोनिया राज्य पर केंद्र सरकार को निर्णायक बना दिया है।

दरअसल, अगर एक बार कैटेलोनिया आजाद हुआ, तो स्कॉटलैंड, आयरलैंड, वेल्स, वैलोनिया, कोर्सिका, बावरिया, मोराविया, इस्ट्रीया, सिसली, वेनितो सहित दो दर्जन से अधिक राज्य, स्वतंत्र राष्ट्र-राज्य बनने का प्रयत्न करेंगे।

यूरोपियन यूनियन ने कैटेलोनिया को धमकी दी है कि उनका अलग होकर यूनियन में दोबारा शामिल होने की कोशिश कठिन होगी, और इसमें कोई निश्चितता भी नहीं होगी। अमेरिका, जर्मनी, फ्रांस जैसे पश्चिमी राष्ट्रों के बयान कैटेलोनिया की मांग के खिलाफ हैं।

कैटेलोनिया की आजाद होने की डगर जितनी कठिन है, उतनी ही बड़ी समस्या भी है। इस घटना से भारत को भी सीख लेने की आवश्यकता है कि यह अपने राष्ट्रवाद की खासियत को समझे और अनेकता को संजोकर रखे, ताकि राष्ट्र की एकता मजबूत बनी रहे।

संबंधित तथ्य

- पहले ही गंभीर आर्थिक संकट से जूझ रहे स्पेन के सामने सदी का सबसे बड़ा राजनीतिक संकट खड़ा हो गया है। स्पेन के उत्तर पूर्वी राज्य कैटेलोनिया ने अपनी आजादी के लिए जनमत संग्रह कराया, जिसके बाद उसने अपनी आजादी की घोषणा कर दी। इसके कुछ देर बाद ही स्पेन के प्रधानमंत्री मारिआनो रजोय ने कैटेलोनिया की संसद भंग करके वहां के राष्ट्रपति और अलगाववादी नेता कार्ल्स पुइगदेमोंत और उनके प्रशासन को बर्खास्त कर दिया।
- आने वाले 21 दिसंबर को स्पेन की सरकार वहां चुनाव कराएगी, जिसके बाद कैटेलोनिया का भविष्य तय होने की उम्मीद है। दरअसल कैटेलोनिया काफी समय से स्पेन से ज्यादा धन और वित्तीय आजादी की मांग करता रहा है। इसके पीछे वजह यह है कि स्पेन में सबसे ज्यादा कमाई वाला हिस्सा यही है जो हर साल 12 अरब डॉलर टैक्स में देता है देश का 25 फीसद निर्यात भी यहीं से होता है, जिसके चलते पूरे देश की जीडीपी में इसकी हैसियत बीस फीसदी की बनती है। कैटेलोनिया से स्पेन को जो कुछ मिलता है, उसका एक बड़ा हिस्सा वह 120 लाख करोड़ डॉलर के कर्ज का अपना बोझ कम करने में लगाता है।
- हालांकि देश की अर्थव्यवस्था में कैटेलोनिया की महत्वपूर्ण हिस्सेदारी के मद्देनजर स्पेन उसके लिए लगभग सभी नीतियां अलग और बाकी राज्यों से बेहतर बनाता रहा है, जिसके चलते स्पेन के दूसरे राज्यों में रहने वाले लोग कुछ खफा भी रहते हैं। 2006 में स्पेन ने बाकायदा अधिनियम बनाकर कैटेलोनिया को ज्यादा ताकत दी, स्वायत्तता दी। लेकिन इससे कैटेलोनिया में पनपती अलगाववादी भावनाएं संतुष्ट नहीं हुईं। उनका मानना है कि कैटेलोनिया के दिए धन का इस्तेमाल स्पेन अपने अन्य गरीब क्षेत्रों को उबारने में कर रहा है।
- दो साल पहले 2015 में कैटेलोनिया में जो सरकार आई, उसने लोगों के स्वतंत्रता अभियान का समर्थन करते हुए जनमत संग्रह कराने का वायदा किया।हालांकि पुइगदेमोंत के जनमत संग्रह के निर्णय पर स्पेन सरकार और मेड्रिड की अदालत ने रोक भी लगाई, फिर भी लोगों से मतदान कराया गया। यूरोप की सबसे मीठी भाषा बोलने वाला स्पेन 1977 के तानाशाही संकट के बाद से अब तक की सबसे भीषण चुनौतियों से गुजर रहा है, तो कैटेलोनिया के अलगाववादियों की भी राहें आसान नहीं हैं। अव्वल तो स्पेन की मर्जी के बगैर कैटेलोनिया उससे अलग हो ही नहीं सकता। अगर अलगाववादी नेतृत्व ने ऐसा कुछ सोचा भी तो तमाम व्यावहारिक अड़चनें इसे संभव नहीं होने देंगी। स्पेन के बगैर उसे यूरोपीय संघ से भी मान्यता मिलनी मुश्किल है। कुल मिलाकर दोनों पक्षों की जरूरत है कि वे आज की दुनिया की हकीकत को समझते हुए थोड़ा लचीला रुख अपनाएं और बीच की कोई ऐसी राह निकालें, जिससे स्पेन का हिस्सा बने रहते हुए भी कैटेलोनिया को आजादी का अहसास हो।

संभावित प्रश्न

कैटेलोनिया के द्वारा स्पेन से अलग होने के पीछे उत्तरदायी कारणों की चर्चा करें तथा कैटेलोनिया की आजादी के वैश्विक परिप्रेक्ष्य में क्या निहितार्थ हो सकते हैं, उनको भी स्पष्ट करें।

न्यायिक नियुक्तियों में तेजी की आस

साभार: दैनिक ट्रिब्यून
(2 नवंबर, 2017)

अनूप भटनागर

सार

इस लेख में लेखक ने भारत में न्यायपालिका में न्यायाधीशों की कमी को बताते हुए इस दिशा में उठाए जाने वाले कदमों की चर्चा की है, जिनसे जल्द ही न्यायाधीशों की नियुक्ति प्रक्रिया में तेजी आने की संभावना है।

विशेष- यह लेख सामान्य अध्ययन प्रश्न पत्र-II (राजव्यवस्था) के लिए महत्वपूर्ण है।

न्यायाधीशों की नियुक्ति, पदोन्नति और तबादलों की प्रक्रिया को लेकर न्यायपालिका और कार्यपालिका के बीच गतिरोध शीघ्र दूर होने की उम्मीद है। इससे उच्चतर न्यायपालिका में न्यायाधीशों के रिक्त पदों पर नियुक्तियों की प्रक्रिया गति पकड़ेगी जो उच्च न्यायालयों में बडी संख्या में लंबित मुकदमों के तेजी से निबटारे में भी मदद होगी। उम्मीद की वजह उच्चतम न्यायालय के प्रशासनिक और न्यायिक पक्ष में उठाये गये तीन महत्वपूर्ण कदम हैं।

उच्चतम न्यायालय की कोलेजियम ने उच्च न्यायालयों के अतिरिक्त न्यायाधीशों के कामकाज के आकलन की व्यवस्था समाप्त करने के फैसले पर केन्द्र की आपत्ति के मद्देनजर कुछ सुधार के साथ इसे पुन: लागू करने और न्यायाधीशों की नियुक्ति, पदोन्नति और तबादले की प्रक्रिया में पारदर्शिता लाने के इरादे से इस संबंध में की जाने वाली सिफारिशें न्यायालय की वेबसाइट पर अपलोड करने के प्रशासनिक निर्णय लिये हैं।

शीर्ष अदालत न्यायाधीशों की नियुक्ति, पदोन्नति और तबादले से संबंधित मेमोरैंडम ऑफ प्रोसीजर (एमओपी) को अंतिम रूप देने में विलंब को देखते हुए इस पर विचार करने के लिये राजी हो गयी है। न्यायमूर्ति आदर्श कुमार गोयल और न्यायमूर्ति उदय यू ललित की दो सदस्यीय पीठ के इस संबंध में न्यायिक आदेश को सारे गतिरोध को समाप्त करने की दिशा में ठोस पहल के रूप में देखा जा रहा है। पीठ ने स्वीकार किया है कि राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग कानून निरस्त करने वाली संविधान पीठ ने अक्तूबर, 2015 के अपने फैसले में हालांकि मेमोरैंडम ऑफ प्रोसीजर को अंतिम रूप देने के लिये कोई समय सीमा निर्धारित नहीं की थी, लेकिन इस मुद्दे को अनंतकाल तक लंबित नहीं रखा जा सकता है। उच्च न्यायालय के अतिरिक्त न्यायाधीशों को स्थाई बनाने से पहले उनके काम के आकलन के लिये अक्तूबर, 2010 में तत्कालीन प्रधान न्यायाधीश एस एच कपाडिष्या ने कुछ दिशा निर्देश जारी किये थे। लेकिन दस साल से चल रही प्रक्रिया इस साल तीन मार्च को तत्कालीन प्रधान न्यायाधीश जगदीश सिंह खेहर ने समाप्त कर दी थी।

केन्द्र सरकार की आपत्ति के मद्देनजर प्रधान न्यायाधीश दीपक मिश्रा की अध्यक्षता वाली पांच सदस्यीय कोलेजियम ने पिछले सप्ताह सर्वसम्मति से तीन मार्च के निर्णय में थोड़ा सुधार कर दिया। नयी व्यवस्था के तहत अतिरिक्त न्यायाधीशों के कामकाज के आकलन की व्यवस्था बहाल की गयी है। अब इन अतिरिक्त न्यायाधीशों के फैसलों का आकलन उच्चतम न्यायालय के दो न्यायाधीशों की समिति करेगी। राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग कानून निरस्त करने वाली संविधान पीठ के बहुमत के फैसले में ही न्यायाधीशों की नियुक्ति, पदोन्नति और तबादले की प्रक्रिया पारदर्शी बनाने के उद्देश्य से प्रधान न्यायाधीश की स्वीकृति से एक पूरक मेमोरैंडम ऑफ प्रोसीजर बनाने का निर्देश दिया गया था। केन्द्र सरकार ने हालांकि अक्तूबर, 2015 के फैसले के बाद ही इसका मसौदा तैयार करके तत्कालीन प्रधान न्यायाधीश तीरथ सिंह ठाकुर के पास भेजा था लेकिन इसके कुछ प्रावधानों पर असहमति की वजह से यह सिलसिला आगे नहीं बढ सका। न्यायमूर्ति ठाकुर के बाद प्रधान न्यायाधीश बने न्यायमूर्ति खेहर के कार्यकाल में भी स्थिति कमोबेश जस की तस ही रही।

इस गतिरोध की वजह से आंध्र प्रदेश एवं तेलंगाना, कलकत्ता, दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, झारखण्ड और मणिपुर उच्च न्यायालयों में मुख्य न्यायाधीश नहीं हैं। इनमें इस समय कार्यवाहक मुख्य न्यायाधीश ही काम देख रहे हैं। शायद इसी गतिरोध का नतीजा है कि 2016 में सर्वाधिक 125 न्यायाधीशों की नियुक्ति करने के बावजूद उच्च न्यायालयों में अभी भी करीब चार सौ पद रिक्त हैं। उच्चतम न्यायालय में रिक्त पदों की संख्या छह है। बहरहाल, न्यायाधीशों के रिक्त पदों की बढ़ती संख्या और मेमोरैंडम ऑफ प्रोसीजर को अंतिम रूप देने में हो रहे विलंब को लेकर वकील आर पी लूथरा ने नये सिरे से उच्चतम न्यायालय का दरवाजा खटखटाया। न्यायालय ने वरिष्ठ अधिवक्ता के वी विश्वनाथन को न्याय मित्र नियुक्त करने के साथ ही अटॉर्नी जनरल से जवाब भी मांगा है। न्यायालय इस मामले में 14 नवंबर को आगे विचार करेगा। मेमोरैंडम ऑफ प्रोसीजर के नये प्रारूप को मंजूरी देने में दो बिन्दु मुख्य रूप से बाधक हैं। पहला तो इसमें राष्ट्रीय सुरक्षा का मुद्दा है। यह प्रावधान सरकार को न्यायाधीश पद के लिये मिले किसी भी नाम की सिफारिश अस्वीकार करने का अधिकार देता है जबकि दूसरा बिन्दु न्यायाधीशों के बारे में मिलने वाली शिकायतों के समाधान के लिये अलग समिति बनाने का है। चूंकि न्यायाधीशों के नामों के चयन, उनकी नियुक्ति प्रक्रिया में पारदर्शिता के अभाव की चर्चा होती रही है इसीलिए सरकार चाहती है कि न्यायाधीशों के बारे में मिलने वाली शिकायतों की जांच और उनकी विवेचना के लिये उच्चतम न्यायालय और सभी उच्च न्यायालयों में

तीन पीठासीन न्यायाधीशों की एक अलग से समिति हो जो सिर्फ न्यायाधीशों के खिलाफ मिलने वाली शिकायतों पर विचार करेगी। न्यायाधीशों के चयन और नियुक्तियों के लिये नामों की सिफारिश करने वाली समिति इसे न्यायपालिका की स्वतंत्रता पर अतिक्रमण के रूप में देखती है। हालांकि सरकार इसे किसी प्रकार का अतिक्रमण नहीं मानती क्योंकि इस समिति के सदस्य पीठासीन न्यायाधीश ही होंगे और यह एक आंतरिक व्यवस्था होगी।

संबंधित तथ्य

- सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्तियां क्रमशः भारतीय संविधान के अनुच्छेद 124 एवं 217 के अंतर्गत की जाती हैं। अनुच्छेद 124 के तहत राष्ट्रपति सर्वोच्च न्यायालय के प्रत्येक न्यायाधीश की नियुक्ति सर्वोच्च एवं उच्च न्यायालय के ऐसे न्यायाधीशों के परामर्श से करता है जिन्हें वह इस कार्य के लिए आवश्यक समझता है। संविधान का यह अनुच्छेद मुख्य न्यायाधीश के अतिरिक्त अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए राष्ट्रपति को मुख्य न्यायाधीश से परामर्श लेना अनिवार्य बनाता है। इसी प्रकार अनुच्छेद 217 किसी उच्च न्यायालय में मुख्य न्यायाधीश के अतिरिक्त अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए राष्ट्रपति द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश, उस राज्य के राज्यपाल एवं उस राज्य उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश से परामर्श लेने को अनिवार्य बनाता है।
- संविधान में कहीं भी 'परामर्श' शब्द की विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत नहीं है अर्थात यह नहीं बताया गया है कि न्यायाधीशों के परामर्श को राष्ट्रपति द्वारा मानना अनिवार्य है या ऐच्छिक। इसी कारण यह भी स्पष्ट नहीं रहा है कि न्यायाधीशों की नियुक्ति के मामले में किसे प्रधानता प्राप्त होगी राष्ट्रपति को या न्यायाधीशों को।
- अनुच्छेद 124 एवं 217 को सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों, निर्वचनों एवं घोषणाओं द्वारा ज्यादा समझा गया है। मुख्य रूप से तीन संविधान पीठों द्वारा दिए गए निर्णयों में इन अनुच्छेदों को व्याख्यायित किया गया है।
- प्रथम निर्णय सात न्यायाधीशों की पीठ ने 4:3 के बहुमत से वर्ष 1981 में दिया है जिसे 'प्रथम न्यायाधीश वाद' के नाम से जाना जाता है। संविधान पीठ ने निर्णय दिया कि अनुच्छेद 124 एवं 217 में परामर्श का अर्थ भारत के मुख्य न्यायाधीश की सहमति नहीं है। यदि राष्ट्रपति (जो केंद्रीय मंत्रिपरिषद की सलाह पर कार्य करता है) और मुख्य न्यायाधीश के बीच मतवैभिन्न होता है, तो राष्ट्रपति की राय अभिभावी होगी।
- दूसरा निर्णय नौ न्यायाधीशों की पीठ ने 7:2 के बहुमत से वर्ष 1993 में दिया जिसे 'द्वितीय न्यायाधीश वाद' के नाम से जाना जाता है। इसमें 1981 में प्रथम न्यायाधीश वाद के निर्णय को उलट दिया गया। निर्णय में परामर्श का अर्थ 'सहमति' से लगाए जाने तथा मुख्य न्यायाधीश की राय की प्रधानता की बात कही गई। इसी निर्णय के आधार पर न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए 'कोलेजियम प्रणाली' अस्तित्व में आई। इसके द्वारा न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए भारत के मुख्य न्यायाधीश एवं 2 अन्य वरिष्ठतम न्यायाधीशों की राय से सरकार को अवगत करा दिए जाने की व्यवस्था थी जो बाध्यकारी थी।
- तीसरा निर्णय 1998 में 'तृतीय न्यायाधीश वाद' दिया गया। नौ न्यायाधीशों की पीठ ने यह निर्णय राष्ट्रपति द्वारा अनुच्छेद 143 के तहत वर्ष 1993 के निर्णय पर मांगे गए स्पष्टीकरण के प्रत्युत्तर में दिया। इसमें पीठ ने द्वितीय न्यायाधीश वाद में दिए गए निर्णय को ही दोहरा दिया अर्थात कोलेजियम प्रणाली जारी रखने पर मुहर लगा दी। इसी निर्णय में कोलेजियम के आकार को विस्तार दिया गया। इसमें सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के साथ चार वरिष्ठतम न्यायाधीशों को शामिल किया गया।
- राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग में 6 सदस्यों का प्रावधान था। जो इस प्रकार हैं-
  - सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश
  - सर्वोच्च न्यायालय के दो वरिष्ठतम न्यायाधीश
  - केंद्रीय विधि एवं न्याय मंत्री
- प्रधानमंत्री, विपक्ष के नेता एवं सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश से गठित 3 सदस्यीय समिति द्वारा चयनित दो प्रतिष्ठित व्यक्ति।
- दोनों ही अधिनियमों को न्यायिक स्वतंत्रता पर हमला और संविधान की आधारभूत संरचना के साथ खिलवाड़ के रूप में देखा गया इन अधिनियमों के विरुद्ध अधिसंख्य याचिकाएं सर्वोच्च न्यायालय में दाखिल की गई।

संभावित प्रश्न

'भारत में न्यायपालिका एवं संसद के मध्य न्यायिक नियुक्तियों को लेकर मौजूद गतिरोध न्याय प्रणाली को कमजोर कर रहा है।' क्या आप इस कथन से सहमत हैं? चर्चा करें।

ताजा आर्थिक कदम कहीं यशवंत की बातों का तो असर नहीं

साभार: बिजनेस स्टैंडर्ड
(3 नवंबर, 2017)

ए के भट्टाचार्य
(आर्थिक विश्लेषक)

सार

इस लेख में लेखक ने भारतीय सरकार द्वारा हाल ही में उठाए गए अर्थव्यवस्था संबंधी कदमों को पूर्व वित्तमंत्री यशवंत सिन्हा के बयानों से जोड़कर प्रस्तुत कर किया है।

विशेष- यह लेख सामान्य अध्ययन प्रश्न पत्र-III (भारतीय अर्थव्यवस्था) के लिए महत्वपूर्ण है।

पिछले चार हफ्तों में केंद्र सरकार आर्थिक नीतियों के मोर्चे पर अपनी सक्रियता बढ़ाती हुई नजर आई है। इस दौरान सरकार की तरफ से आर्थिक नीतियों से संबंधित चिंताओं को दूर करने के लिए उठाए गए कुछ कदमों पर गौर करें तो यह बात अधिक स्पष्ट रूप से दिखेगी। मोटे तौर पर केंद्रीय वित्त मंत्रालय ने इस अवधि में तीन तरह के कदम उठाए हैं। पहली श्रेणी में तेल कीमतों को काबू में रखने के लिए उठाए गए कदम हैं, दूसरी श्रेणी में वस्तु एवं सेवा कर (जीएसटी) की खामियों को दूर करने वाले उपाय हैं जबकि तीसरी श्रेणी के उपाय सरकारी नियंत्रण वाले बैंकों की तनावग्रस्त परिसंपत्ति की समस्या को दूर करने और ढांचागत निवेश को प्रोत्साहन देने से जुड़े हुए हैं।

तेल कीमतों में बढ़ोतरी की समस्या सितंबर के मध्य में सतह पर आई थी। पेट्रोल एवं डीजल की कीमतें मई 2014 के स्तर पर पहुंच गई थीं जबकि तीन साल पहले की तुलना में अंतरराष्ट्रीय स्तर पर कच्चे तेल के भाव करीब आधे हो चुके हैं। दबाव में आई सरकार को पेट्रोल एवं डीजल पर आयात शुल्क घटाने का ऐलान करना पड़ा। सरकार ने कच्चे तेल की कीमतों में गिरावट के समय उत्पाद शुल्क को बढ़ाकर सही ही किया था ताकि अतिरिक्त राजस्व जुटाया जा सके। लेकिन कच्चे तेल के भाव बढने पर उत्पाद शुल्क में कटौती करने का फैसला मुश्किल हो गया था क्योंकि इस तरह के कदम से सरकार को मिलने वाले राजस्व में कमी आती और उसका राजकोषीय घाटा भी बढ़ता।

लेकिन उत्पाद शुल्क में कटौती की मांग होने के एक पखवाड़े बाद 3 अक्टूबर को सरकार ने पेट्रोल-डीजल पर उत्पाद शुल्क में प्रति लीटर 2 रुपये की कटौती का ऐलान कर दिया। तत्काल प्रभाव से लागू इस फैसले से चालू वित्त वर्ष की शेष अवधि में 13,000 करोड़ रुपये की राजस्व क्षति होने का अनुमान है। यह एक मुश्किल फैसला था लेकिन इसने यह दिखाया कि सरकार बदले हुए हालात के मुताबिक कदम उठाने को तैयार है।

जीएसटी के नियमों में बदलाव के संकेत भी अक्टूबर के पहले हफ्ते में ही देखने को मिले थे। वित्त मंत्री अरुण जेटली ने 1 अक्टूबर को ही कहा था कि जीएसटी की वजह से सरकार को राजस्व प्रवाह तटस्थ स्थिति में पहुंचने पर कर संरचना में सुधार की स्थिति बन सकती है। उन्होंने जीएसटी की कर दरों में कटौती की भी संभावना जताई थी। इसके कुछ ही दिनों बाद हुई जीएसटी परिषद की बैठक में जीएसटी से संबंधित कारोबार जगत की कठिनाइयों को दूर करने के लिए कई उपायों की घोषणा की गई। निर्यातकों को बड़ी राहत देते हुए कहा गया कि कारोबारी निर्यातकों को निर्यात के मकसद से खरीदे गए सभी उत्पादों पर 0.1 फीसदी कम कर देना होगा। निर्यातकों से वसूले गए कर को समयबद्ध तरीके से रिफंड करने का भी फैसला उस बैठक में लिया गया।

इसके अलावा कंपोजिशन स्कीम के दायरे में आने वाली इकाइयों के सालाना कारोबार की सीमा को भी 75 लाख रुपये से बढ़ाकर 1 करोड़ रुपये कर दिया गया। इसके साथ 1.5 करोड़ रुपये तक के सालाना कारोबार वाली इकाइयों को मासिक के बजाय तिमाही आधार पर रिटर्न जमा करने की छूट भी दी गई। परिषद ने 27 उत्पादों पर लगने वाली जीएसटी दर को कम करने और वाहनों को लीज पर देने या टैक्सी किराये पर लेने जैसी सेवाओं पर लागू दर में भी रियायत देने का फैसला किया। ई-वे बिलों की व्यवस्था शुरू करने को लेकर कारोबारियों के तीखे विरोध को देखते हुए इसे अगले साल तक के लिए स्थगित कर दिया गया। खुद राजस्व सचिव हसमुख अढिया ने भी माना था कि जीएसटी में कुछ सुधारों की जरूरत है।

सरकार ने 24 अक्टूबर को सार्वजनिक बैंकों में 2.11 लाख करोड़ रुपये की पूंजी डालने का एक बड़ा ऐलान भी किया। इसमें 1.35 लाख करोड़ रुपये के पुनर्पूंजीकरण बॉन्ड जारी करने, बाजार से बैंकों को 58,000 करोड़ रुपये की इक्विटी जुटाने और 18,000 करोड़ रुपये सीधे केंद्र सरकार द्वारा डालने की बात कही गई है। सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों को गैर-निष्पादित परिसंपत्तियों के चलते पेश आ रही पूंजी की कमी को दूर करने के लिए सरकार ने यह कदम उठाया है। उसी दिन सरकार ने देश के बड़े कस्बों और शहरों को जोडने के लिए सात लाख करोड़ रुपये का बड़ा निवेश करने की महत्त्वाकांक्षी सड़क योजना की भी घोषणा की।

हालांकि हमें यह ध्यान रखना होगा कि इनमें से कोई भी कदम पूरी तरह नया नहीं है। तेल कीमतों में कटौती, जीएसटी संबंधित मुद्दे और सार्वजनिक बैंकों की तरलता समस्या को दूर करने के लिए सरकार पहले भी कई कदम उठाती रही है। लेकिन इतना जरूर है कि इन कदमों और नीतिगत उपायों की दरकार लंबे समय से महसूस की जा रही थी। संभवत: यही वजह है कि सरकार की तरफ से उठाए गए इन सारे कदमों की व्याख्या सत्तारूढ़ भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) के वरिष्ठ नेता यशवंत सिन्हा के उस चर्चित लेख के नतीजे के तौर पर की जा रही है जो उन्होंने 'इंडियन एक्सप्रेस' में लिखा था। सिन्हा ने 27 सितंबर को प्रकाशित अपने लेख में सरकार पर जरूरी आर्थिक कदम नहीं उठाने का आरोप लगाते हुए कहा था कि पेट्रोलियम कीमतों, जीएसटी क्रियान्वयन में आ रही दुश्वारियों और बैंकिंग क्षेत्र को पेश आ रही वित्तीय समस्याओं को दूर करने के लिए पर्याप्त कदम नहीं उठाए गए हैं।

सिन्हा के उस लेख के प्रकाशन के चार हफ्ते के ही अंदर सरकार ने उनकी तरफ से उठाए गए मसलों के समाधान के लिए कई कदम उठाए हैं। वैसे यह तर्क दिया जा सकता है कि सरकार तो अपने स्तर पर ही ये कदम उठाने की तैयारी कर रही थी। लेकिन ऐसा लगता है कि पार्टी के मार्गदर्शक मंडल में शामिल सदस्य की तरफ से हुई आलोचना ने इन कदमों के तीव्र क्रियान्वयन में अपनी भूमिका जरूर निभाई है।

मोदी सरकार के नवीन आर्थिक सुधार

- भारत दुनिया की उन उभरती हुई अर्थव्यवस्था में से एक है, जो दुनियाभर में विपरीत आर्थिक परिस्थितियां होने के बावजूद उसके प्रभाव से बचा हुआ है। वैश्विक मंदी के कारण वैश्विक व्यापार में गंभीर गिरावट आई और वैश्विक कमोडिटी कीमतों में तेज गिरावट के कारण निर्यात को नुकसान पहुंचा। इससे विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में तेल और खन्न उत्पाद निर्यातकों को बहुत ज्यादा नुकसान हुआ। लेकिन घरेलू बाजार के विस्तार और मोदी सरकार के मेक इन इंडिया अभियान की वजह से भारत इस वैश्विक मंदी से बच गया। भारत को तेल और इस्पात, सीमेंट जैसी अन्य वैश्विक वस्तुओं की गिरती कीमतों का फायदा मिला, जिसने भारत के विनिर्माण क्षेत्र को बढ़ावा देने के साथ ही व्यापार को बढ़ाने में भी मदद की।
- मार्च 2017 में भारत ने निर्यात में दो अंकों की बढ़ोतरी के लक्ष्य को पाने के लिए बेहतर पर्दर्शन किया, जो पिछले तीन साल पहले की तुलना में पिछले सभी उच्च वृद्धि के आकड़ों को पार कर गया। अक्टूबर 2014 के बाद से करीब दो सालों तक नकारात्मक स्थिति में रही भारत की निर्यात विकास दर, सितंबर 2016 में सकारात्मक स्थिति में पहुंच गई। इसके बाद से ही, इस निर्यात विकास दर ने पीछे मुड़कर नहीं देखा।
- वर्ष 2014-15 में 36 बिलियन डॉलर का प्रत्यक्ष विदेशी निवेश 48 फीसद बढ़कर वर्ष 2015-16 में 53 बिलियन डॉलर पहुंच गया। इस प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के चलते व्यापार को भी गति मिली। वर्ष 2016-17 में दिसंबर माह तक भारत को 47 बिलियन अमेरिकी डॉलर का प्रत्यक्ष विदेशी निवेश प्राप्त हुआ, जो इस बात की ओर इशारा करता है कि यह पिछले वर्ष के 53 बिलियन डॉलर के एफडीआई से आगे निकल जाएगा। विदेशी मुद्रा भंडार वर्ष 2014 के 312 बिलियन डॉलर से बढ़कर वर्ष 2016 में 365 बिलियन डॉलर पर पहुंच गया है। नियमों का सरलीकरण, 1200 अप्रचलित कानूनों को खत्म करना, रियल एस्टेट नियामकों की स्थापना के लिए रियल एस्टेट विधेयक, एक मुख्य निर्यात वस्तु अर्थात् रत्न उद्योग के लिए ई-मार्केट की स्थापना और कई अन्य पहलों ने पिछले 2-03 वर्षों के दौरान व्यापार करने के प्रक्रिया को काफी सरल एवं बेहतर बनाया है।
- सरकार द्वारा कार्यान्वित किए जा रहे सुधार, 2020 तक अनुमानित 882 बिलियन डॉलर के भारत के व्यापार निर्यात के लक्ष्य को हासिल करने में मदद करेंगे। विभिन्न सेवा निर्यातों के साथ, भारत का कुल निर्यात करीब 1.3-1.4 ट्रिलियन डॉलर होगा। ऐसी परिस्थितियों में कुल दो तरफा व्यापार 2.5 ट्रिलियन डॉलर की सीमा को पार कर सकता है। यह एक महत्वाकांक्षी लक्ष्य है, मगर सुधारों के मद्देनजर इसको हासिल करना संभव है। 1991 के आर्थिक उदारवाद के बाद, जीएसटी अपने आप में दूरगामी और अत्यंत प्रभावशाली सुधार है, जो व्यापार, निर्यात एवं अर्थव्यवस्था के स्तर पर देश की विकास की गति को और तेज करेगा।

संभावित प्रश्न

भारत सरकार द्वारा हाल ही में किए गए आर्थिक सुधारों की चर्चा करें तथा उनके द्वारा भविष्य में उत्पन्न होने वाले संभावित परिणामों को भी दर्शाएं।

बतौर राजनेता प्रधानमंत्री मोदी की दुविधा

साभार: बिजनेस स्टैंडर्ड
(4 नवंबर, 2017)

शेखर गुप्ता

सार

इस लेख में लेखक भारत के प्रधानमंत्री मोदी के राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से जुड़े इतिहास एवं उससे पनपी रूढ़िवादिता तथा एक प्रधानमंत्री के रूप में वैश्विक मानदंडों के अनुसार उदार अर्थव्यवस्था को लागू करने की मानसिकता के मध्य संभावित द्वंद्व की चर्चा कर रहे हैं।

विशेष- यह लेख सामान्य अध्ययन प्रश्न पत्र-II (शासन व्यवस्था) के लिए महत्वपूर्ण है।

जोसेफ हेलर के प्रसिद्घ उपन्यास कैच-22 में लेफ्टिनेंट मिलो माइंडबेंडर का चरित्र खुद से कारोबार करके ख्याति अर्जित करता है। वह कुछ ऐसे कारोबार करता है कि लेनदेन के क्रम में शामिल हर व्यक्ति को मुनाफा होता है जो अंतत: सरकार की जेब से आता है। वह निंदित पूंजीवाद का ब्रांड ऐंबेसडर इसलिए बन गया क्योंकि उसके लिए अपनी कंपनी (सिंडिकेट) के लाभ के अलावा कोई चीज मायने नहीं रखती थी। वह हमेशा मुनाफा कमाता। वह अक्सर गांव के सारे अंडे और टमाटर खरीद लेता और फिर अपनी सैन्य टुकड़ी में उनको मनमाने दाम पर बेचता।

एक बार उसने दुनिया भर में मौजूद मिस्र के कपास का पूरा भंडार खरीद लिया। इसके बाद कोई खरीदार ही नहीं रह गया और अगर किसी ने उससे इसे खरीदा भी तो वापस उसे ही बेच दिया। उसने इन कपास के गठ्ठों को चॉकलेट में डुबाकर अपने साथी जवानों की मेस में बेचने की भी कोशिश की लेकिन नाकाम रहा। उसने एकाधिकारवादी खरीदार और विक्रेता बनकर मिस्र की कपास का पूरा बाजार समाप्त कर दिया।

आखिर में उसने एक रास्ता निकाला और सोचा कि इसे सरकार को क्यों न बेच दिया जाए? बतौर एक पक्का पूंजीवादी वह भी मानता था कि कारोबारी जगत में सरकार का भला क्या दखल? परंतु अपनी उक्तियों के लिए मशहूर और मुक्त बाजार समर्थक पूर्व अमेरिकी राष्ट्रपति केल्विन कॉलिज की व्यंग्य में कही एक बात उसके बचाव के लिए सामने थी। उन्होंने कहा था, 'कारोबार में शिरकत सरकार का काम है।' मिलो के मुताबिक राष्ट्रपति ने जो कहा सच ही कहा होगा। सरकार का काम ही है कारोबार तो भला कपास को अमेरिकी सरकार को क्यों न बेच दिया जाए?

अब मिलो माइंडबेंडर की जगह सन 1969 के बाद हमारे देश की सरकार को रखकर देखते हैं और भारतीय बैंकों की जगह मिस्र की कपास। आप कैच-22 को यहां घटित होते हुए देख सकते हैं। सबसे पहले इंदिरा गांधी ने सभी बड़े बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया और बैंकिंग और वित्तीय क्षेत्र में राज्य का स्वामित्व शुरू किया। सभी बीमा कंपनियां और विकास से जुड़े वित्तीय संस्थान सरकारी थे। इसके बाद उसने खुद से खरीदारी शुरू की। यानी बैंकों से अपने बॉन्ड में निवेश कराना, अपनी परियोजनाओं और सरकारी उद्यमों को कर्ज दिलवाना आदि। बाद में ऐसे अनेक मामलों में कर्ज माफी भी की गई। बैंकिंग पर एकाधिकार सरकार के लिए वोट दिलाने का बंदोबस्त तक बन गया। इस प्रक्रिया में बैंक नियमित अंतराल पर दिवालिया होने लगे।

चूंकि बैंक सरकारी हैं इसलिए उनको नाकाम नहीं होने दिया जा सकता है और सरकार किसी भी हालात में विफल हो नहीं सकती। उसके पास कर लगाने और नकदी छापने का अधिकार है। यही वजह है कि सरकार बैंकों का बार-बार पूंजीकरण करती है और अगर राजकोष की स्थिति बेहतर दिखाने के लिए यह काम बजट से इतर तरीके से किया जाना है तो बैंकों द्वारा बॉन्ड जारी किए जाते हैं। बहरहाल, क्या यह सब करती हुई हमारी सरकार लेफ्टिनेंट मिलो माइंडबेंडर से कहीं अधिक पूंजीवादी नहीं दिखती। वास्तव में ऐसा है। अगर उसका अर्थशास्त्र कैच-22 था तो हमारा कैच-23 है।

हो सकता है आपको लगे कि मैं यहां तो कैच-23 जैसे व्यंग्य का इस्तेमाल कर रहा हूं जबकि हाल ही में मैंने सरकार के बैंकों को उबारने के पैकेज की तारीफ की है। मैं बता दूं कि यह एक अच्छी योजना है क्योंकि मौजूदा हालात में यही संभव था। अगर आपका मरीज दमे के दौरे के कारण घुट रहा है और आप चिकित्सक हैं तो आप उसके शरीर में स्टेरॉयड्स ही डालेंगे, भले ही इसके दुष्प्रभाव होते हों।

ऐसे हालात में जहां 70 फीसदी बैंक सरकारी हैं और जिनका फंसा हुआ कर्ज कुल पूंजी से ज्यादा हो रहा हो, वहां आप क्या करेंगे? ऐसे हालात में जहां कुछ करना आवश्यक हो। यह पैकेज निर्णायक, साहसी और एक हद तक रचनात्मक भी है। फंड जुटाने के लिए बॉन्ड जारी करने का विचार अच्छा है लेकिन यह विचार परेशान करने वाला है कि एक बार फिर किसी समृद्घ सरकारी उपक्रम को इन्हें खरीदने को कहा जाएगा। इससे कहीं बेहतर, निर्णायक और सुधारवादी विकल्प मौजूद थे। बड़े नेता कभी संकट को जाया नहीं जाने देते परंतु नरेंद्र मोदी ने एक अवसर गंवा दिया। हम इतने भी अतार्किक नहीं हैं कि उनसे इंदिरा गांधी की सबसे बुरी राजनीतिक विरासत

यानी बैंकों के राष्ट्रीयकरण को पूरी तरह समाप्त करने को कहें। परंतु वह दो सबसे कमजोर और छोटे सरकारी बैंकों के निजीकरण के साथ एक शुरुआत कर सकते थे। इसके बाद कह सकते थे कि अगले 10 सालों तक हर वर्ष सबसे कमजोर बही खाते वाले सरकारी बैंक को बेचा जाएगा। इससे बाजार पर असर होता। अन्य बैंक बेहतर प्रदर्शन की कोशिश करते, वोट हासिल करने के लिए जनता का पैसा खर्च करने की राजनीतिक वर्ग की प्रवृत्ति पर लगाम लगती और मोदी का नाम बड़े सुधारकों में शुमार हो जाता।

परंतु क्या मोदी वाकई चाहते हैं कि उनको आर्थिक सुधारक के रूप में याद किया जाए? सरकारी उपक्रमों के प्रति प्रतिबद्धता अथवा सरकार का कारोबारी हस्तक्षेप ही किसी सुधारक के लिए एकमात्र कसौटी नहीं हो सकता। हां यह एक अहम पहलू अवश्य है। कोई भारतीय नेता, यहां तक कि मनमोहन सिंह और पी वी नरसिंह राव और पी चिदंबरम तक ने सरकारी उपक्रमों को बेचने का साहस नहीं दिखाया। खासतौर पर फायदे में चलने वाले उपक्रमों को बेचने का। यह प्रतिबद्धता केवल अटल बिहारी वाजपेयी ने दिखाई थी। वह सन 1970 की राजनीतिक अर्थव्यवस्था में निहित सर्वोच्च न्यायालय के एक आदेश से निराश थे। उस आदेश के जरिये ऊपरी अदालत ने कहा था कि बिना संसदीय मंजूरी के विनिवेश नहीं किया जा सकता। इस क्रम में उसने तेल क्षेत्र की दो दिग्गज कंपनियों एचपीसीएल और बीपीसीएल की बिक्री रोक दी थी। उम्मीद थी कि मोदी अपनी पार्टी के आदर्श नेता रहे पूर्व प्रधानमंत्री वाजपेयी की राह पर चलेंगे लेकिन ऐसा नहीं हुआ। वह एचपीसीएल को बेच भी रहे हैं तो किसे, एक अन्य सरकारी कंपनी ओएनजीसी को। यानी वही मिलो अर्थशास्त्र, अपने ही पैसे से अपनी ही चीज खरीदना। कैच-23 का उदाहरण। नरेंद्र मोदी के समर्थकों के पास एक तर्क है कि सन 1991 के बाद की अवधि में जब ज्यादातर सुधार चोरी-चुपके हो सके, आज सबकुछ जनता की नजर के सामने है और उसकी राजनीतिक कीमत चुकानी पड़ सकती है। लेकिन जनता का मिजाज बदलने के लिए मोदी से बेहतर स्थिति में कौन है? ऐसे में सवल यह है कि वह ऐसा क्यों नहीं कर रहे हैं? क्या वह वाकई करना चाहते हैं? अगर नहीं तो फिर वह चाहते क्या हैं?

इसका जवाब उनकी राजनीति में निहित है। वाजपेयी के उलट वह एक प्रतिबद्ध स्वयंसेवक हैं। इसके अलावा वाजपेयी जहां आरएसएस की पुरानी सामाजिक-आर्थिक की अपरिपक्वता पर हंसते, वहीं मोदी उस पर पूरा यकीन करते हैं। वह मोहन भागवत जैसे स्वयंसेवक भी होना चाहते हैं और वाजपेयी जैसे आधुनिक सुधारक के रूप में भी याद किया जाना चाहते हैं। इस दौरान वह एक और इंदिरा गांधी के रूप में सामने आ पा रहे हैं जो केंद्रीकृत सत्ता में यकीन रखती थीं। एक बड़ा आर्थिक राष्ट्रवादी जो एक विस्तारवादी और नियंत्रणवादी सरकार चला रहा है। मैं उनके राजनीतिक-आर्थिक मस्तिष्क को कुछ इस तरह पढना चाहूंगा कि राज्य द्वारा अर्थव्यवस्था चलाने में कुछ भी गलत नहीं है, बशर्ते कि आप राज्य शासन समझदारीपूर्वक और ईमानदारी से चलाएं। संपूर्ण राज्य की तलाश कभी पूरी नहीं हुई। ऐसा संभव नहीं दिखता।

मोदी ने अपनी युवावस्था और मध्य वय पूर्णकालिक स्वयंसेवक के रूप में बिताई है और उनकी रूढिघ्वादी बनावट रातोरात दूर नहीं होगी। परंतु अब वह वैश्विक नेताओं से मिल रहे हैं और कहीं ज्यादा सफल अर्थव्यवस्थाओं और समाजों को देख रहे हैं तो उनके मन में भी यह इच्छा होगी कि वह नवउदारवादी विचार को अपनाएं। सामाजिक-धार्मिक रूढिघ्वादिता और नवउदारवाद की ये दोनों ताकतें पूरी तरह विरोधाभासी हैं और एक साथ नहीं रह सकतीं। यही वह राजनीति है जहां मोदी का अर्थशास्त्र उलझ जाता है। इस दुविधा को क्या नाम दिया जाए? मेरा सुझाव है कि इसे कैच-24 राजनीति कहा जाए।

संभावित प्रश्न

प्रधानमंत्री मोदी के द्वारा उठाए जाने वाले आर्थिक उदारीकरण की दिशा में कदम पूरी तरह स्वाभाविक नहीं दिखायी पड़ते हैं। इसके पीछे उत्तरदायी कारणों की विस्तृत चर्चा करें।